'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार–मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ९ | वाराणसी, मंगलवार, २० जनवरी, १९५९ | पच्चीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

नलासर (बनासकाँठा) ३०-१२-'५८

देशी नरेश ग्रामदान का नेतृत्व करें

आज का जिला अनेक राजाओं के छोटे-छोटे राज्यों से बना हुआ है। लेकिन अब आप देख रहे हैं कि इन राजाओं के राज्य विलीन हो गये हैं। क्या वे सभी राजा बुरे थे ? ऐसा तो कहा नहीं जा सकता। कितने ही अच्छे भी थे। किन्तु लोगों ने निश्चय किया कि अब हमें राजाओं की जरूरत नहीं, इसलिए वे नहीं रहे। पहले प्रजा के सुख-दुःख राजा के हाथ में रहा करते थे। राम, अशोक, शिवाजी जैसे राजा होते तो प्रजा की उन्नति होती थी। यदि वे बुरे होते तो प्रजा को भी तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ते थे।

आज व्यापकता की प्रक्रिया शुरू

आज छोटे-छोटे राज्यों के दिन नहीं रहे। भारत एक विशाल देश बन गया है। हमारे देश से बाहर भी कितने ही छोटे-छोटे राष्ट्र आपस में मिल रहे हैं। मिस्र में सीरिया मिल गया और अब तो तीन-चार दूसरे भी राष्ट्र मिल गये हैं। कारण, आज दुनिया में व्यापक होने की प्रक्रिया चल रही है। विज्ञान-युग का यही सन्देश है। इस युग में छोटे-छोटे घर चल नहीं सकते। छोटे-छोटे घरों को विज्ञान का लाभ तो होगा ही नहीं, उलटे हानि ही होगी। विज्ञान कहता है कि टुकड़े करेंगे तो खत्म हो जायँगे। इसी तरह देश, प्रान्त और गाँवों के भी टुकड़े करेंगे तो हानि ही उठायेंगे। यदि एक होंगे तो पृथ्वी पर स्वर्ग ला सकेंगे।

आज मालकियत पर दुहरा हमला

पहले आत्मज्ञान भी यही बात कहता था कि 'मैं-मेरा, तू-तेरा' ये मालकियत के भेद मिटाकर विशाल बनें। हमारे साधु-सन्त भी यही कहा करते थे। फिर भी हममें से कुछ लोग उसे सुनते थे तो कुछ अनसुनी भी कर देते थे। सुनते वे ही थे, जिन्हें स्वर्ग का मोह होता था। कारण, ऐसा करने पर मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा, यह बताया जाता था। किन्तु विज्ञान मरने के बाद की नहीं, इसी जीवन की बात करता है। वह कहता है कि एक-दूसरे से प्रेम करोगे, त्याग करोगे, मालकियत छोड़ोगे, तभी टिक पाओगे, नहीं तो यहीं नरक भोगोगे। इसी जिन्दगी में नरक का अनुभव करना पड़ेगा। इस तरह आज एक ओर से आत्मज्ञान तो दूसरी ओर से विज्ञान, दोनों ओर से मालकियत पर प्रहार हो रहा है। ऐसी स्थिति में मालकियत टिक ही कैसे पायेगी ? जो इसे बनाये रखने की कोशिश करेंगे, वे इस जमाने के लिए नालायक सिद्ध होंगे।

सभी बड़ा तो इकाई भी बड़ी हो

यह युग की बात है। इस युग में प्रान्त, देश और राष्ट्र भी छोटे नहीं रह सकते तो घर छोटे कैसे रह सकेंगे ? इसलिए गाँव भी एक घर बनना चाहिए। अब छोटी-से-छोटी इकाई घर नहीं, गाँव बनना चाहिए। जब सभी चीज बड़ी हो रही है तो मापने का साधन भी बड़ा ही होना चाहिए। अब गाँव में जितनी माताएँ हों, वे सभी सब बच्चों की माँ होंगी, एक बच्चे की नहीं।

यह ईश्वर की प्रेरणा है

लोग कहते हैं कि यह विचार तो सुन्दर है, पर यह कभी हो सकेगा ? मैं पूछता हूँ कि क्या यह बरसात है कि अपने-आप बरस पड़ेगी ? यह तो हमारे हाथ की बात है। हम इसे करने का निश्चय करें तो क्या हमें कोई आकर रोकनेवाला है ? हम करने का निश्चय करेंगे तो करके ही रहेंगे। आप कहेंगे कि 'यह हमारी इच्छा की बात है, हम छोटे ही रहेंगे।' लेकिन यह संभव नहीं। यह आपकी मर्जी की बात नहीं। यह तो ईश्वर की प्रेरणा है। उसीकी प्रेरणा से मेरी यह यात्रा चल रही है और वही मुझे घुमा रहा है। फिर जो मुझे घुमा रहा है, क्या वह आपको घर में बैठा रखेगा ? वह आपको वहाँ न बैठने देगा।

शक्ति के टुकड़े न करें

आज किसान-मंडल के कितने ही सदस्य मुझसे मिलने आये। उन्होंने अपना एक मण्डल बनाया है : 'किसान-मण्डल'। लेकिन मान लीजिये, इन सबके हाथ काटकर यहाँ रख दें और कहें कि यह 'हाथ-मण्डल' तो क्या काम चल सकेगा ? इसी तरह किसान-मण्डल, बुनकर-मण्डल आदि के रूपों में यदि हम ग्राम-शक्ति के टुकड़े करें तो उससे ग्राम-शक्ति क्षीण हो जायगी। फिर गाँव में ताकत ही क्या रहेगी ? हमारा कितना विशाल देश है ! इसमें ३७॥ करोड़ लोग रहते हैं, जिनके ७५

करोड़ हाथ हैं। आपके दो हाथ और मेरे दो हाथ मिलकर चार हो सकते हैं। लेकिन इस तरह ग्राम-शक्ति के टुकड़े करेंगे तो दो और दो मिलकर शून्य हो जायगा। आज शक्ति का योग होने की जगह शक्ति की बाकी ही हो रही है। यही कारण है कि देश में इतनी अधिक शक्ति होने के बावजूद परिणाम शून्य ही दीख रहा है। इसलिए हमें जमने की ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है।

कार्यकर्ता भी टुकड़े करने की आदत से बचें

यह बात केवल गाँववालों को ही समझने की नहीं, प्रत्युत कार्यकर्ताओं को भी इसे समझना चाहिए। आज जहाँ देखें, वहीं टुकड़े ही टुकड़े दीख रहे हैं। कहा जाता है कि यह कांग्रेसवाला है, यह पी० एस० पी० वाला, यह रचनात्मक कार्यकर्ता, यह ग्रामदान-कार्यकर्ता या यह निर्माण-कार्यकर्ता है। इस तरह छोटे-छोटे टुकड़े कर हम कभी टिक न सकेंगे। ऐसे छोटे-छोटे टुकड़े करने की हमें आदत ही पड़ गयी है। हम छोटा-सा मण्डल बनाकर बैठ जाते हैं और फिर उसके बीच खान-पान के नियम लगा देते हैं। इस तरह नयी-नयी जातियाँ खड़ी करते हैं। 'खादीवाला' भी एक जाति बन जाती है और वह अपनी लड़की गैरखादीवाले को नहीं देता। यों हिन्दुस्तान की जातियों के बारे में कहा करता हूँ कि एक पेड़ पर जितने अनगिनत पत्ते हो सकते हैं, यहाँ उतनी जातियाँ हैं। बीस घरों की एक 'बीसा' जाति तो पचीस घरों की 'पचीसा' जाति है। इनमें आप लोग भी ये नयी जातियाँ बनायेंगे तो कैसे चलेगा? इससे हम देश की शक्ति क्षीण कर देंगे। अतः आप सब इसपर विचार करें।

राजाओं की भारतीय मनोवृत्ति

ये राजा लोग जिस रास्ते पर चले, क्या उसमें उनकी कुछ हानि हुई? नहीं, ये तो साफ-साफ बच गये। उन्हें जो प्राप्त करना चाहिए, उसे वे पा गये। अब वे यदि पुरुषार्थ करें तो पहले जितने ही नहीं। उससे भी अधिक लोकप्रिय होंगे। उन्होंने भारी त्याग किया है, बहुत-से लोग यह समझते हैं कि राजाओं को मिटाने की सारी करामात सरदार ने ही कर दिखायी। लेकिन यह गलत है। इसमें राजाओं की भलमनसाहत भी कम कारण नहीं, यह ध्यान में रखना चाहिए। सरदार की करामात होगी तो वह हो सकती है। लेकिन यह भी मानना ही पड़ेगा कि राजाओं में भी भारतीय मनोवृत्ति जाग उठी थी। वे चाहते तो खून-खच्चर भी कर सकते थे। लेकिन सूर्य और चन्द्रवंशीय इन राजाओं में भी ऐसी क्षुद्रता तथा अविवेकिता आ ही कैसे सकती है? उनके इस त्याग का ही परिणाम है कि आज वे प्रजा के लिए कुछ काम करते हैं तो प्रजा उनके प्रति बहुत आदर रखती है।

राजाओं को आवाहन

मैं इन राजाओं से कहता हूँ कि आप कैसे हैं? जो त्याग करना था, वह तो आपने कर दिया, पर उसका लाभ नहीं उठाते। यदि आपने जो त्याग किया, उसका लाभ उठायें तो आपको पूरा लाभ मिल सकता है। अभी उस भाई ने बनासकाँठा जिले की जानकारी करायी। इतनी-इतनी नदियाँ, इतनी जमीन और ये-ये पहाड़ आदि बतलाते हुए भूदान-सेवक के तौर पर एक मियाँ-बीबी को ही बताया, जो सात लाख की यहाँकी जनता की सेवा के लिए हैं। सेवकों की यह कितनी कमी है? आप लोगों को तो अब अपने पेट की चिन्ता नहीं है। इसलिए आप गाँव-गाँव जाकर लोगों से कह सकते हैं कि "क्या आप यह छोटी-छोटी मालकियत बनाये रखे हैं? इसे निकाल फेंकिये और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना कीजिये।" आपको जाकर यह कहने का पूर्ण अधिकार है। अधिक-से-अधिक हुआ तो आपको छठा हिस्सा देना पड़ेगा। छह लाख में से एक लाख दे भी दें तो कोई कमी नहीं पड़ेगी। इसके बदले आपको लोगों की ओर से प्रेम और आदर प्राप्त होगा। इस तरह वे यदि स्वयं होकर इस दिशा में आगे बढ़ें और इस काम का नेतृत्व उठा लें तो राजा रहते समय वे जितने लोकप्रिय नहीं हो सके, उससे भी अधिक प्रिय हो जायँगे। ये मेहता महाराज राजाओं के पास जाकर उन्हें ग्राम-सेवक होने के लिए क्यों नहीं कहते? ये राजा लोग क्षत्रिय हैं। प्रजा की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है। यदि हम उनका इस काम के लिए आवाहन करें तो ये लोग अवश्य आयेंगे। इस तरह मैं समझता हूँ कि यहाँ काम काफी होगा, कारण यहाँ त्याग की भावना पैदा हो गयी है।

आदिवासियों में जागृति

इसके अतिरिक्त यहाँके आदिवासी भी जाग गये हैं। अतः काम अत्यधिक होने की पूरी आशा की जा सकती है। आप लोगों ने सुना ही होगा कि यहाँ पिछड़ी जातियों में ग्रामदान हुए हैं। ऐसी अक्ल पिछड़ी जातियों को ही सूझ सकती है, पर यहाँ बैठे हुए इन फेंटेवालों को यह बात नहीं सूझती। यह परमेश्वर की लीला ही है। रामचन्द्र का अवतार हुआ तो उन्हें बन्दरों ने ही मदद की। भगवान कृष्ण को व्रज के ग्वालबालों ने मदद दी। ईसा को मदद देनेवाला एक मल्लाह और एक बढ़ई था। जिन्हें अधिक ज्ञान न था। ऐसे-ऐसे शिष्य उन्हें मिले। उन्होंने ऐसा पराक्रम दिखलाया कि आज आधी दुनिया ईसा का नाम ले रही है। इसे परमात्मा की लीला ही कहा जा सकता है। वही उन लोगों को जगाता है, जो सर्वथा पिछड़े हुए हैं। अतः यह पूरी आशा की जा सकती है कि यह जिला जाग उठेगा। जहाँ एक ओर राजाओं का इतना त्याग हो, दूसरी ओर आदिवासी जाग गये हों और तीसरे उन मियाँ-बीबी की मदद से एक शान्ति-सैनिक भी मिल गया हो, वहाँ जागृति होने में कोई सन्देह ही नहीं।

ग्राम-परिवार द्वारा ही आज के कानूनों से छुटकारा

मेरे पास आज जो लोग आये, वे कह रहे थे कि सरकार ने ऐसे-ऐसे कानून बनाये हैं, जिनसे हमें भारी परेशानी उठानी पड़ रही है। मैंने कहा कि सरकार यह सब जान-बूझकर नहीं करती। वह तो पानी जैसी हुआ करती है। बाढ़ आती है तो वह किसी खेत में मिट्टी छोड़ जाती है तो कितने ही खेत और घर बह जाते हैं। जिसके खेत में मिट्टी पड़ती है, उसका लाभ होता है तो दूसरे की हानि। कानून इसी तरह अन्धा हुआ करता है। इसका उपाय यही है कि ऐसे कानून बदले जायँ और उसके लिए जनमत तैयार किया जाय। किन्तु आज जनमत को पूछता ही कौन है? दो-चार शासकों के मन में जो आता है, वही हुआ करता है। आज के लोकतन्त्र का यही हाल है। इसमें राजशाही के दोष रह गये हैं, कारण लोग ही जागृत नहीं हैं। आज के शासक हमारे सेवक हैं। पाँच वर्षों के लिए हमने उन्हें सेवा के लिए चुना है। फिर भी उन सेवकों के सेवकों का सेवक सिपाही गाँव में पहुँच जाता है तो हम उससे डरने लगते हैं। फिर अपने सबसे बड़े सेवकों को मालिक मानें तो बात ही क्या है? जब तक यह सब चलता रहेगा, तब तक लोकमत टिक नहीं सकता। अतः प्रत्येक गाँव एक परिवार बने और एकमत से बोले तो जिनको आपने नौकर रखा है, वे नौकरों की तरह ही रहेंगे। लेकिन

आप तो उन्हें नौकर की तरह नहीं रखते और मालिक, साहब कहा करते हैं। फिर यह कैसे हो सकता है ?

ग्राम-स्वराज्य का मूल तत्त्व

जनता में स्वतन्त्र शक्ति आनी चाहिए। वह तभी आ सकती है, जब कि हमारे गाँवों में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना होगी। आज तो हमें यही चिन्ता पड़ रही है कि पण्डित नेहरू के बाद कौन ? वह राजशाही थी और यह लोकशाही है, फिर फर्क ही क्या पड़ा ? यह चिन्ता हमें करनी नहीं पड़ेगी, यदि गाँवों में सेवक तैयार हो जायँ। हर गाँव में एक-एक विभाग के मंत्री रहें, जैसे अन्न-मंत्री, उद्योगमंत्री, शिक्षामंत्री आदि। गाँवों में अच्छी-से-अच्छी शिक्षा की व्यवस्था रहे, मुकदमों की सुनवाई वहीं हो, विदेश-मंत्री भी रहें, जो दूसरे गाँवों से संपर्क स्थापित करें। सभी एकमत से निर्णय करें। ऐसा हो जाय तो आपको यह चिन्ता नहीं रहेगी, बल्कि दिल्लीवाले भी आपसे कुछ सीखेंगे। सारांश, जब गाँव-गाँव में स्वराज्य चलानेवाले निकलेंगे तो देश का कारोबार चलानेवाले भी उन्हींमें से निकलेंगे। अतः जब तक गाँव-गाँव स्वराज्य नहीं होता, तब तक देश का तत्त्व प्रकट नहीं हो सकता। यही है ग्राम-स्वराज्य का मूलभूत तत्त्व।

सेवक आपमें से ही मिलेंगे

ये सभी सेवक कहाँसे मिलेंगे ? ये सब लोग जो यहाँ बैठे हैं, उन्हींमें से ये सेवक मिलेंगे। क्या सेवकों को कोई सींग या पूँछ होती है ? आप ही सेवक हैं। क्या आप जन्मभर अपने घर में ही पड़े रहेंगे ? हमारे धर्म में लिखा है कि अमुक अवस्था के बाद वानप्रस्थ-आश्रम ग्रहण करना चाहिए। आज तो मानव मरता है, तभी उसका वानप्रस्थ होता है। ऐसा नहीं होना चाहिए। चालीस-पैंतालीस वर्ष की उम्र होते ही बच्चों पर घर का भार सौंपकर स्वयं सेवा के लिए निकल पड़ना चाहिए। आज हमें ही ऐसा नहीं लगता कि घर-द्वार और अपना काम छोड़कर सेवा के लिए निकल पड़ें। बड़े-बड़े मन्त्री भी अपने पदों से चिपके हुए हैं, छोड़ते ही नहीं। उनके रहते अगर दूसरा कोई मंत्री हो तो उनकी सलाह भी उन्हें मिल सकती है, पर इसका भी विचार नहीं किया जाता। उन्हें लगता है कि हमारे बिना प्रजा अनाथ हो जायगी; किन्तु इस तरह जनता कैसे तैयार हो पायेगी ?

वानप्रस्थाश्रम की योजना अत्यावश्यक

इसलिए हमें जीवन की एक विशेष अवस्था में घर से छुट्टी पाकर सेवक बनना चाहिए। इससे बुद्धि भी निस्तेज नहीं होती। बापू सेवक कैसे थे ? जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती गयी, वैसे-ही-वैसे उनकी बुद्धि तेजस्वी होती गयी। प्रतिभा बढ़ती गयी। नोआखाली में उन्होंने जो त्याग किया, वह तो उसकी चरमकोटि हो गयी। इस प्रकार जैसे-जैसे वे वृद्ध होते गये, दिन-दिन उनका विकास होता गया। इसका कारण यही है कि वे घर से सर्वथा अनासक्त थे। बात यह है कि शरीर की तरह बुद्धि भी विषयासक्ति से क्षीण हुआ करती है। इसलिए स्पष्ट है कि हमें सेवकों की कमी पड़नी ही नहीं चाहिए। अतः वानप्रस्थाश्रम का विचार सभी समझें और एक विशेष अवस्था के बाद वानप्रस्थ होकर, गृहासक्ति और विषयासक्ति से मुक्त हों, जिससे देश का काम बन जाय।

प्रार्थना-प्रवचन

भावनगर (गोहिलवाड़) ८-११-'५८

लोकशाही की रक्षा के लिए लश्कर और मालिकी मिटाना अनिवार्य

आज मैं भावनगर आया हूँ। भावनगर की कीर्ति मैंने बहुत सुनी थी। यहाँके दक्षिणामूर्ति का काम बहुत प्रशंसनीय हुआ था। शिक्षण के क्षेत्र में उन्होंने नये विचार दिये और उन विचारों को क्रियान्वित करने की योजना भी देश के सामने रखी है। इसलिए मुझे उत्सुकता थी कि कभी मैं यहाँ आऊँ। भूदान, ग्रामदान की यात्रा के कारण आज वह संभव हुआ है।

भाव और भक्ति में थोड़ा अन्तर होता है। भाव हृदय में अव्यक्त होता है। भक्ति उसीका व्यक्त रूप है। जब भाव करुणा तथा सेवा में मूर्तिमान होता है, तब उसका रूपान्तर भक्ति में होता है। इसलिए यहाँ मैं यह आशा रखकर आया हूँ कि भावनगर भक्तिनगर बने। पिछले सात-आठ सालों से मेरी यात्रा चल रही है। उसमें मैंने आज की समाज-रचना पर कुछ टीका की है। आज की सरकार कैसी है, लोकशाही का रूप क्या है, समाजवाद ने क्या किया—इन सब विषयों पर बोलकर मैंने कुछ जवाबदारी अपने सिर पर लाद ली है। मैं चाहता हूँ कि मेरी यह टीका आपको ठीक लगे तो आप संयुक्त जिम्मेवारी उठाने के लिए तैयार हो जायँ।

मेरी सबसे बड़ी टीका लोकशाही पर है। अभी तक जितनी भी राज्य-रचनाएँ हुई हैं, उनमें यह लोकशाही सर्वोत्तम रचना है। परन्तु इस लोकशाही में राज्य-रक्षण का आधार उसी सेना पर रखा है, जिसका आधार दूसरी राज्य-पद्धतियाँ लेती हैं। राज्यशाही, सरंजामशाही, समाजवाद, फैसिज्म, पूँजीवाद आदि सभी सैन्य-बल को राष्ट्र-रक्षण का साधन मानते हैं और यही चीज लोकशाही मानती है तो दुःख की बात है। लोकशाही में और दूसरी शाहियों में मैं यह फर्क समझता हूँ कि लोकशाहीवाले सैन्य को नहीं मानते। लोकशाही के तत्त्वज्ञान में सैन्य गौण है। तत्त्व के तौर पर सैन्य की इच्छा न रखकर भी व्यावहारिक तौर पर सैन्य को मान्यता देने से लोकशाही का रूपान्तर लश्करशाही में हो जाता है। इसलिए लोकशाही का आधार अहिंसा ही होनी चाहिए। व्यावहारिक तौर से आज दुनिया की जो स्थिति है, उसमें सेना से भय ही पैदा होता है। अपने देश में भी सेना है; वह भय निवारण करने के साधन के तौर पर नहीं, परन्तु भय प्रवर्तन करनेवाले साधन के तौर पर है।

सेना के कारण भय में वृद्धि

आज हम पाकिस्तान के बारे में भय रखकर सेना का बचाव करते हैं तो पाकिस्तानवाले भी इसी बात पर सेना का बचाव करते हैं कि हमें हिन्दुस्तान का भय है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान, ये दोनों एक-दूसरे का भय रखते हैं। हम कहते हैं कि हम पाकिस्तान का भय रखते हैं। यह भय सकारण है। पाकिस्तान अपने लिए भय रखता है, वह भी निष्कारण है, ऐसा नहीं कहा जाता है। सकारण भय किसका और निष्कारण किसका, उसका

एकतर्फा निर्णय नहीं हो सकता है। जिनको भय लगता है, उनका वह भय सत्य ही है, ऐसा मानना चाहिए। हम रूस और अमेरिका की सेना तथा शस्त्र कम करने के लिए कहते हैं, पर रूस और अमेरिका को भी तो एक-दूसरे का भय है। ऐसी हालत में जब कि हम एक-दूसरे के डर के कारण सेना रखते हैं, तब रूस या अमेरिका को निःसैन्यीकरण अथवा निःशस्त्रीकरण करने के लिए कहने का हमें क्या हक है ?

बहुत-से देश एक-दूसरे के डर के कारण सेना रखते हैं। हम डर के कारण सेना रखते हैं, ऐसा वे कहते हैं; परन्तु सेना के कारण से डर बढ़ता है, यह उनको मान्य करना चाहिए। सेना से दूसरे राष्ट्रों में भय पैदा होता है, इसमें तो कोई शंका नहीं है, परन्तु सेना के कारण अपने ही राष्ट्र में भय पैदा होता है, यह समझने की चीज है। हम निकम्मा भय दुनिया में पैदा करते हैं और सेना को मजबूत करने के लिए खर्च करते हैं। उसके बदले उस धन का उपयोग गरीबों की सेवा करने में करें तो सारी दुनिया में एक नयी चेतना और नयी दृष्टि आयेगी। हिन्दुस्तान की नैतिक शक्ति बढ़ेगी और सारी दुनिया की विवेक-बुद्धि जागृत होगी, जिससे दुनिया की समस्याएँ हल होने में आसानी होगी। कुछ लोग कहते हैं कि सेना हटाने या कम करने की बात से लोग डरपोक बनते हैं और सेना के कारण बहादुर बनते हैं। लेकिन मैं इससे बिल्कुल उलटा मानता हूँ और देखता हूँ कि सेना से लोग निडर होने के बदले डरपोक बन गये हैं। निर्भयता के बदले सेना रखते हैं, परन्तु जैसे दया की जगह पर दवाखाना नहीं चलेगा, उसी तरह निर्भयता की जगह सेना नहीं चलेगी। हम लोगों में जो आन्तरिक शक्ति है, उसके कारण रक्षण हो सकता है, ऐसा विश्वास हम खो बैठते हैं और मजबूत सेना पर आधार रखते हैं। अगर सेना हार जाती है तो सारा देश भयभीत हो उठता है। पिछले महायुद्ध में जर्मनी के पंद्रह-बीस लाख सैनिकों ने दूसरे देशों पर हमला किया। इतना बड़ा अभिक्रम देखकर ऐसा लगा कि ये सारे बहुत बहादुर हैं, परन्तु चार साल के बाद जर्मनी को लगा कि सामनेवाला पक्ष बहुत मजबूत है। उसके पास अपने से चार-पाँच गुना हवाई जहाज और दूसरे शस्त्र हैं। इसलिए बराबर विरोध हो रहा है। यह देखकर हुक्म दिया गया कि समस्त सैनिक अपने शस्त्र नीचे रखकर शत्रु की शरण जायँ। इस तरह जिन लोगों ने एक समय दूसरे देश पर हमला किया था, उन्होंने शरणार्थी होना स्वीकार किया। इसपर से ध्यान में आयेगा कि शस्त्र से लोग बहादुर होते हैं, ऐसा नहीं है।

एटम के सामने छुरी

इस जमाने में हिन्दुस्तान जैसा देश शस्त्र रखता है, इससे क्या रूस और अमेरिका के साथ उसकी तुलना हो सकती है? हम एक साल में जितने रुपये सेना पर खर्च करते हैं, उतने रुपये अमेरिका हर रोज अपनी सेना के लिए खर्च करता है। ऐसी स्थिति में हम सामनेवालों से कहें कि तुम एटम रखोगे तो हम छुरी क्यों न रखें ? इस प्रश्न में कोई बुद्धि है तो फिर हम क्यों नहीं सैन्य-विघटन की बात सोचते ? इसका जवाब इतना ही है कि हम सब लोग पुरानी तरह से सोचने के आदी हैं। नयी बातें सोचते ही नहीं हैं।

देश के रक्षण के लिए सेना की आवश्यता नहीं है, ऐसा मेरा मानना है। अगर देश आन्तरिक शक्ति पर निर्भय रहनेवाला है तो कम-से-कम इतना देखना चाहिए कि देश की अन्तर्गत शांति के लिए पुलिस और लश्कर की जरूरत न पड़े। बाहर से हमला भले ही हो, उसकी हम परवाह न करें। हम विज्ञान पर या विज्ञान की विवेक-बुद्धि पर आधार रखें तो कम-से-कम इतना तय करें कि अन्तर्गत सवालों में हम पुलिस को नहीं बुलायेंगे। पुलिस को बुलाने की आवश्यकता न रहे, ऐसा दिखाना चाहिए। अगर हम ऐसा न बता सकें तो अपनी सेना के बारे में जो टीका है, वह भले हो योग्य हो तो भी हमें अधिकार नहीं मिलता है।

शांति-सेना की स्थापना हो या न हो, मैं ऐसा मानता हूँ कि लश्कर को हम आज के आज ही मिटा सकते हैं। यह बात सिर्फ मैं ही नहीं, राजाजी जैसे लोग भी कहते हैं कि लश्कर का खर्च घटना चाहिए। मैं तो एक अव्यवहारी, स्वप्न में विचार करनेवाला, आध्यात्मिक चिन्तन में मशगूल आदमी माना जाता हूँ, परन्तु राजाजी के लिए ऐसा नहीं कह सकते कि उनमें राजकीय योग्यता का अभाव है या वे व्यावहारिक दृष्टि से विचार नहीं कर सकते। इसी तरह से कृपालानीजी ने भी पार्लमेंट में कहा कि सेना की जरूरत नहीं है। ऐसे-ऐसे राजनीतिज्ञ पुरुष बोलने लगे हैं तो देश में शांति-सेना की स्थापना हो या न हो, परन्तु लश्कर के पीछे जो तीन सौ करोड़ रुपये का खर्च होता है, उसकी जरूरत नहीं, ऐसा कहनेवाला पक्ष मजबूत हो जाता है। परन्तु मैं इस तरह इसमें से नहीं छूट सकता हूँ। देश के अन्तर्गत शांति का सवाल लोक-शक्ति से हल कर सकते हैं, यह करके दिखाने की जिम्मेवारी मेरे ऊपर आती है।

हिंसा को उत्तेजन न मिले

आज एक भाई ने मुझसे कहा कि आपकी बात तो ठीक है, परन्तु अभी इस गोहिलवाड़ जिले में अशांति के लक्षण नहीं दीखते हैं। अशांति के लक्षण जब प्रत्यक्ष हों, तभी शांति-सैनिकों की आवश्यकता है, ऐसा नहीं। आज देश के सामने इतनी समस्याएँ हैं कि कहाँ और कब अशांति फूट निकलेगी, यह नहीं कहा जा सकता ! बँगलोर जैसे शहर में, जहाँ शांत लोग रहते हैं और बहुत सालों अशांति नहीं हुई, वहाँ कौन कह सकता था कि अशांति फूट निकलेगी ? अहमदाबाद जैसा शहर, जहाँ गांधीजी रहते थे और जहाँ से अहिंसा तथा सत्याग्रह का तत्त्व-दर्शन सारी दुनिया को मिला, वहाँ कौन जानता था कि अशांति होगी ? अशांति के लिए कारण होते हैं, यह बात अलग है। अशांति दीखती नहीं, क्या इसीलिए सर्वत्र शांति हो सकती है ?

आज हिन्दुस्तान में स्वराज्य-प्राप्ति के बाद बहुत सवाल जैसे के तैसे पड़े हैं। लोगों की स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ; विकास का रास्ता रुका है। इसके लिए किसीको दोष नहीं देना है। यह अपना ही दोष है। धीमी प्रगति का कारण यह है कि यहाँकी जनता दो सौ साल तक पारतन्त्र्य में रही। सब तरह से स्वातन्त्र्य छीना गया। देश पीसा गया। हीन और दीन हुआ। फिर भी अब असंतोष न हो और अशांति न बढ़े, ऐसा हम चाहते हैं, परन्तु केवल इच्छा करने से वह नहीं होगा। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि इतनी एक ही जिम्मेवारी नहीं है। जो चाहते हैं कि लोकशाही शुद्ध हो और अहिंसा के बल के बिना लोकशाही का विचार लोगों में मूर्तिमंत हो, इसके लिए तो हमपर दुहरी जिम्मेवारी आती है। एक तो अशान्ति के कारण होने पर भी अशान्ति न होने दें। दूसरे, अशान्ति हो ही जाय तो उसके मूल कारणों का निराकरण करें। 'स्टेटस-क्वो' (यथास्थिति) कायम रखकर शांति-सेना की कल्पना करना व्यर्थ है। इसलिए आज की स्थिति बदलने की जिम्मेवारी हमपर आती है और जब तक परिस्थिति में बदल नहीं होता है, तब तक अहिंसा के ऐसे प्रयोग होते ही रहेंगे। इसलिए यह देखने का हमारा

काम है कि हिंसा को उत्तेजना न मिले और अशान्ति के कारण मिटें।

जमीन की मिल्कियत मिटने पर ही शान्ति-सेना

अभी तक क्रांति का नाम लेनेवाले 'स्टेटस क्वो' (यथास्थिति) के साथ काम करते हैं। हमारे बहुत से कम्युनिस्ट मित्र कहते हैं कि वर्तमान परिस्थिति जल्दी-से-जल्दी बदलनी है। समाज में तुरन्त क्रान्ति लानी है। आज पूँजीपतियों की गरीबों पर जो हिंसा चलती है, वह असह्य है। इससे लोग दबेल बन गये हैं। समाज की इस भयानक परिस्थिति को बदलने के लिए अगर हमें हिंसा करनी पड़े तो भी हम हिंसा नहीं करेंगे—ऐसा आग्रह नहीं होना चाहिए। इस विषमता को समाप्त करने के लिए अहिंसा से काम चल सके तो जरूर उसका सहारा लिया जा सकता है, पर अहिंसा के बदले हम समाज की विषमता को अथवा पूँजीपतियों की गरीबों पर चलनेवाली हिंसा को सहन नहीं कर सकते। ऐसा हमारे साम्यवादी मित्रों का विचार है। इसका मतलब यह निकलता है कि क्रांतिवादी शान्तिवादी नहीं हैं, जो शान्तिवादी हैं, वे क्रान्तिवादी नहीं हैं। अगर ऐसा ही होता रहेगा तो कभी भी, किसी भी तरह से किसीका भी समाधान नहीं होगा। शान्तिवाद और क्रान्तिवाद दोनों एक साथ होने चाहिए। इसलिए आज के समाज का परिवर्तन करने की हिम्मत रखने के लिए यह विचार लोगों को समझाना चाहिए और परिवर्तन करके सबको दिखाना चाहिए। यह एक बाजू से हमारी जिम्मेवारी है और दूसरी बाजू से देश की। आज की अवस्था में सबका रक्षण हो और हिंसा न हो, ऐसी जिम्मेवारी उठानी चाहिए।

जमीन की मालिकी मिटाने की बात अत्यन्त आवश्यक है और यह मिटे बिना मैं शांति-सेना की बात करूँ तो वह नहीं चलेगी। प्रेमपूर्वक जमीन की मालिकी मिटाने की बात शांति-सेना के साथ कर्तव्यरूप से जोड़ी गयी है, ऐसा मैं मानता हूँ। जमीन की मालिकी मिटाने की बात क्रांतिकारक है। परन्तु हम चाहते हों कि हम अपनी मालिकी न छोड़ें तो आज की स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि मालिकों के बाल को भी धक्का न लगे। मालिकी मिटाने के विचार के साथ शान्ति-सेना की जिम्मेवारी भी उठानी चाहिए। नहीं तो लोग हमें सीधे सवाल पूछेंगे कि तुममें और कम्युनिस्टों में फर्क क्या है? वे कहते हैं कि तुम तो लगभग कम्युनिस्ट जैसे हो और जब मैं इनको फर्क नहीं बताता हूँ तो वे नहीं समझ सकते। वैसा कहने के लिए कारण भी है। क्योंकि उनको यह भय लगता है कि कम्युनिस्ट भी मालिकी मिटाने की बात करते हैं और यह भी मालिकी मिटाने की बात करता है। मालिकी मिटाने के विचार में कुछ लोगों को भय लगता है। मैं उनको निर्भय बनाने के लिए कहता हूँ। मेरे सिद्धान्त में यह क्रांति शांति से ही हो सकती है। तब फिर मालिकों को भय किस बात का होगा?

ग्रामदान : अभयदान

गुजरात-प्रवेश के बाद मैं बराबर कहता रहा हूँ कि ग्रामदान याने अभयदान है। ग्रामदान में किसी प्रकार की जबरदस्ती नहीं है। गाँववाले मिलकर विचार करें और ग्राम-सभा बनायें। वे ग्राम-स्वराज्य की, ग्राम-उन्नति की योजना करें और फिर सबको जमीन दें, नहीं तो ग्रामोद्योग देने की जिम्मेवारी ग्राम-सभा उठाये। इससे ज्यादा निर्भय योजना दूसरी कोई नहीं है। गांधीजी ने जो बात बतायी थी, वैसी ही यह बात है। येलवाल में नेताओं की परिषद् में मैंने स्पष्ट कहा था कि ग्रामदान आज की परिस्थिति में सब तरह से सुरक्षित है और हिन्दुस्तान में यह एक संरक्षण का साधन है। मान लो, कल कहीं लड़ाई शुरू हो जाय तो आज अपने देश का दूसरे देशों के साथ जो आयात-निर्यात चलता है, वह एकदम रुक जायगा। ऐसी हालत में पंचवर्षीय योजना का क्या होगा? अनाज के भाव एकदम चढ़ जाने से हिन्दुस्तान के गाँवों को कौन बचायेगा? इसकी जिम्मेवारी किसकी है? गत महायुद्ध के समय बंगाल में तीस लाख लोग अन्नाभाव में मर गये। उस वक्त हम जेल में थे। जब यह समाचार सुना, तब सारी जिम्मेवारी अंग्रेजों पर छोड़कर हम लोग तीनों वक्त खाते थे। आज अगर ऐसा हो जाय तो जिम्मेवारी किसकी? हम सब अपने पैर पर खड़े रहें, यह जरूरी है। ग्रामदान या जमीन की मालिकी मिटाये बिना यह नहीं हो सकता है। उसके बिना भी ऐसा हो सकता है, ऐसा कोई मुझे बताये तो मैं मालिकी मिटाने का आग्रह छोड़ने के लिए तैयार हूँ। बहुत नेताओं और अर्थशास्त्रज्ञों के साथ मेरी चर्चा हुई है। परन्तु अभी तक किसीने यह नहीं बताया, जिससे ग्रामदान के बिना भी हम गाँवों को बचा सकें। इसलिए मेरा दावा है कि ग्राम-स्वराज्य के लिए शांति-सेना की जरूरत है और शांतिसेना के लिए ग्राम-स्वराज्य अनिवार्य है।

करुणामूलक समाज-रचना

मैं अगर मालिकों को निर्भय न कर सकूँ तो फिर गाँव की जमीन की मालिकी का विसर्जन, संपत्ति की मालिकी का विसर्जन किस तरह होगा? जमीन की मालिकी का विसर्जन तो आरंभ का कदम है। उसके बाद फैक्टरी की मालिकी और दूसरी तरह की मालिकी भी खत्म हो जायगी। तब भारत की किसी तरह की हानि नहीं होगी। साम्ययोग बहुत निर्भय है, क्योंकि वह करुणामूलक है। साम्यवाद में भय लगता है, क्योंकि वह मत्सरमूलक है। समाज के लोग अपने से ज्यादा सुखी लोगों को देखकर सिर्फ मत्सर करें तो समाज का नुकसान होगा। मैं देखता हूँ, अपने से भी दुःखी लोगों की तरफ देखने का शिक्षण मिलेगा तो मत्सर नहीं होगा, मन में करुणा पैदा होगी। जो अपने से ज्यादा दुःखी है, उसे सुखी करने के लिए कुछ-न-कुछ देना चाहिए, ऐसी भावना होने से 'लेवलिंग' होगा, समतल होगा, वही समाज-रचना करुणामूलक होगी। इससे उलटा हमसे जो ज्यादा सुखी हैं, उनकी तरफ देखकर मत्सर से समता लाने की बात करेंगे तो साम्ययोग नहीं होगा, साम्यवाद होगा। उससे समाज आगे नहीं आयेगा। इसलिए करुणामूलक प्रवृत्ति रहनी चाहिए। करुणामूलक प्रवृत्ति से सर्वत्र साम्य-स्थापन करना है। इसीलिए है यह ग्रामदान की योजना!

जमीन की मालिकी मिटाना पहला कदम

मैंने जमीन की मालिकी से आरंभ किया है, क्योंकि जमीन की स्वतन्त्र कीमत है। पैसे की स्वतन्त्र कीमत नहीं है। मान लो कि मेरे पास एक हीरा है। उसकी कीमत दस हजार रुपया है। परन्तु उसे खरीदने के लिए कोई तैयार न हो तो उसकी कीमत एक ज्वार के दाने के बराबर भी नहीं। इसी तरह मूँगा, मोती आदि की कीमत शून्य हो सकती है, परन्तु जमीन की कीमत शून्य नहीं हो सकेगी। एक बार एक भाई ने मुझसे पूछा कि हमारे यहाँ तो जमीन की कीमत पाँच हजार रुपया एकड़ है, उसका दान कैसे होगा? मैंने उससे कहा कि पाँच हजार रुपया अगर तुम जमीन में बोओगे तो क्या बरसात के बाद नोटों से कोई फसल

आयेगी? जमीन की कीमत पैसे में करना उसकी कीमत शून्य करने जैसा है। यह बिल्कुल निकम्मा मूल्य है। जमीन प्राणदायी वस्तु है। क्या पैसे में प्राण है? पैसे के सिवा हम जी सकते हैं, परंतु जमीन से फसल न हो तो नहीं जी सकते। इसलिए मैंने पहले जमीन का सवाल लिया है। जमीन की मालिकी मिट जाय तो दूसरी मालिकी मिटाने में कठिनाई नहीं होगी। बुनियाद गिर जाय तो ऊपर की भी मंजिल गिर जायगी।

गांधी को इसमें न घसीटें

शांति-सेना के बिना ग्रामदान नहीं होगा, ग्रामदान के बिना शांति-सेना नहीं होगी और दोनों के बिना अहिंसा का नहीं; हिंसा का राज्य होगा। फिर भले ही राज्यकर्ता गांधीवाले हों या दूसरे हों। गांधीवालों के हाथ से जो कुछ हो, वह अहिंसा है, ऐसा नहीं। हिंसा तो हिंसा ही है; फिर वह चाहे जिससे हो। सर्वोदयवाले भी हिंसा के लिए गांधीजी का आधार लेते हैं। कहते हैं कि कश्मीर में लश्कर भेजने की सम्मति गांधीजी ने दी थी। ऐसे महापुरुषों का आधार लेने की हमें क्या जरूरत है? मैं तो कहता हूँ कि अगर आप गांधीजी का आधार लेते हैं तो आपका पक्ष जरा कमजोर होता है। आप भगवान कृष्ण का आधार लें। वह बड़ा आधार है। भगवद्गीता में भी हिंसा के लिए समर्थन है। हिंदू-महासभावाले तो भगवान कृष्ण का आधार लेते ही हैं। हमें समझना चाहिए कि विज्ञान के जमाने में हम अगर हिंसा का समर्थन करेंगे और सेना का मंडन करते फिरेंगे तो सर्वोदय-विचार दुनिया के आगे नहीं आयेगा। फिर अहिंसा, प्रेम, करुणा वगैरह स्वाद के लिए समाज में रहेगी। परन्तु वह रक्षक देवता है, ऐसा विश्वास नहीं रहेगा।

विकास के पथ पर

भौतिक बल पराजित हो रहा है। आत्मबल बढ़ाये बिना अब काम नहीं चलेगा। इसलिए हमें वेदान्त, विज्ञान और विश्वास, इन तीन चीजों का विकास करना चाहिए। मैंने इसके लिए एक श्लोक भी बनाया है:

'वेदान्तो विज्ञानं विश्वासश्चेति शक्तयस्तिस्रः।
यासां स्थैर्ये नित्यं शान्तिसमृद्धी भविष्यतो जगति॥'

वेदान्त यानी वेदों का अन्त। इसका अर्थ है, सारे काल्पनिक धर्मों का निराकरण। विज्ञान समाज की शक्ति बढ़ाता है। आत्मज्ञान विकास की दिशा प्रशस्त करता है और विश्वास शान्ति लाता है।

आज तो घर में भी विश्वास कम है। पति-पत्नी वर्षों साथ रहते हैं, बच्चे हो जाते हैं, फिर भी किसके हृदय में क्या है, इसका ज्ञान एक-दूसरे को नहीं होता। माता-पिता के बीच अविश्वास है, मित्रों-मित्रों के बीच अविश्वास है और भिन्न-भिन्न पक्षवालों में तो अविश्वास है ही। पार्टियों में भी गुट होते हैं, उन लोगों में भी परस्पर अविश्वास। राजकारणी लोग 'यूनो' (संयुक्त राष्ट्रसंघ) में आमने-सामने बैठते हैं, परन्तु एक-दूसरे के लिए मन में संशय रखते हैं। वे एक-दूसरे पर विश्वास करने की हिम्मत नहीं कर सकते। इस सार्वत्रिक संशयवाद से हिंसा अटल हो जायगी। इसलिए विश्वास-शक्ति का विकास करना चाहिए। विश्वास से तृष्णा घटती है, स्पर्धा मिटती है, शान्ति स्थिर होती है।

अ०भा० आदिवासी सेवा-मंडल के साथ — व्यारा (सूरत) २४-९-'५८

आदिवासियों को सम्यक् ज्ञान और प्रेम सिखलायें

[अखिल भारत आदिवासी सेवा-मण्डल के कार्यकर्ताओं ने पूज्य विनोबाजी के समक्ष निम्नलिखित तीन प्रश्न उपस्थित किये:

(१) जहाँ ग्रामदान मिले हैं, वहाँ हम किस तरह का काम करें?

(२) संस्था क्या मदद दे सकती है?

(३) भूदान और सूतांजलि के कार्य में आदिवासी कैसे योग दे सकते हैं? पू० बाबा ने इनपर प्रकाश डालते हुए कहा:]

आदिवासियों के विकास का प्रश्न

आपने ठीक ही सवाल पूछे हैं। इन दिनों मेरा चिंतन भी इसी दिशा में चल रहा है। अब तक मदुरा जिले में कुछ ग्रामदान मिले हैं, उन्हें छोड़कर बाकी सभी ग्रामदान आदिवासी क्षेत्र में मिले हैं। मैं सोचता था कि इन गाँवों का विकास कैसे हो? अभी जो कार्यकर्ता ग्रामदान के काम में लगे हैं, वे सब नीतिवान हैं, त्यागी हैं और सादगी से रहते हैं। इसी कारण आदिवासी उनपर श्रद्धा रखते हैं। उनके विचार सुनते हैं, समझते हैं और ग्रहण भी करते हैं। आदिवासी क्षेत्रों के ग्रामदान और निर्माण के काम की यही बुनियाद है।

अभी मैं खानदेश के अक्राणी और अक्कलकुवाँ महालों में जाकर आया हूँ। अक्राणी महाल पूरा ग्रामदान में मिला है। दो-तीन गाँव बचे हैं, जहाँ मैं बहुत बारिश के कारण नहीं जा सका। कार्यकर्ताओं का कहना है कि वे भी मिल जायँगे। वहाँ प्रो० वंग काम करनेवाले हैं। उनके साथ दो-तीन साथी रहेंगे। प्रो० वंग ने कबूल किया है कि हम लोग श्रम करेंगे, तभी आदिवासियों के साथ रह सकेंगे और ग्राम-विकास का काम कर सकेंगे। अब तो सर्व-सेवा-संघ और सरकार के बीच यह तय हुआ है कि ग्राम-रचना में उनका भी सहयोग रहेगा। मैं सोचता था कि ग्रामदान हासिल करने का काम जो ग्रुप करेगा, वही ग्रुप उन गाँवों का विकास न कर सकेगा। निर्माण-कार्य के लिए अनुभव चाहिए। ग्रामदान प्राप्त करनेवालों के पास वह अनुभव नहीं है। इसलिए धीरे-धीरे जब उन्हें अनुभव होगा, तभी वे अच्छा काम कर सकेंगे। किन्तु फिर प्राप्ति का काम जो हो रहा है, वह बंद हो जायगा। लेकिन अब जब कि दोनों साथ काम करते हैं तो बहुत बड़ा काम हो जायगा।

मिला-जुला कार्यक्रम हो

सरगुजा (मध्य प्रदेश) में राजमोहिनी का बहुत असर है। उसने वहाँके लोगों से शराब छुड़वायी है। उसे सरकार से जैसी मदद मिलनी चाहिए थी, वैसी नहीं मिली। राजमोहिनी वहाँसे शराब की दूकानें हटाना चाहती थी, पर इसे उत्तर प्रदेश की सरकार ने मान्य नहीं किया। वहाँसे दूकानें हट जातीं तो एक क्रान्ति हो जाती। पर वह नहीं हुई। आखिर वह बात मेरे सामने आयी। सत्याग्रह करके दूकानें हटाना मुझे ठीक नहीं लगा। इसलिए ऐसे क्षेत्रों के लिए मिला-जुला कार्यक्रम आवश्यक हो जाता है। शराब छुड़वाना, खादी का काम करना, ग्रामदान बढ़ाना और फिर ग्राम-स्वराज्य का काम करना चाहिए। संथाल परगना, कोरापुट आदि जिले इसके लिए अनुकूल भी हैं, किन्तु

किन्तु वहाँ काम करने के लिए ज्यादा लोग तैयार नहीं होते। आध्यात्मिक वृत्ति के सेवापरायण लोगों से ही वहाँ काम अच्छा हो सकता है।

मान लीजिये कि यह काम संघ उठा ले तो राँची, पलामू, संथाल परगना, आदि क्षेत्रों में बहुत काम हो सकता है। कडप्पा जिले में २५० ग्रामदान मिले हैं। वे अधिकांश आदिवासी प्रदेश में हैं। उनके निर्माण का उत्तरदायित्व भी आप ले लें तो उस विभाग में काफी काम हो सकता है।

आदिवासियों की संस्कृति क्या है ?

हम जो कहते हैं कि आदिवासियों की अलग और स्वतंत्र संस्कृति है, वैसा नहीं है। आखिर संस्कृति के माने क्या हैं? भूख लगने पर खाना, यह प्रकृति है और ज्यादा खाना खिलाना विकृति। लेकिन आज तो सभी विपरीत चल रहा है। संस्कृति के नाम से लोग शराब भी पीते हैं, पर शराब संस्कृति नहीं है। उसी तरह आदिवासी लोग बहुत कम कपड़ा पहनते हैं, लेकिन यह उनकी संस्कृति नहीं। उन्हें शर्म मालूम होती है, पर लाचारी से पहनते हैं, इसलिए यह विकृति ही है। उनकी संस्कृति तो निसर्ग के साथ रहने और खेती में काम करने की है! वे बहुत ही सच्चे और बालकवत् निष्पाप होते हैं। लेकिन हमारी विकृतियों के संसर्ग से आज वे तालीम के नाम पर बदमाश बन रहे हैं, जिन्हें हम 'चतुर' कहते हैं। उनकी सचाई अज्ञानमूलक होती है। अतः वे ज्ञानपूर्वक सचाई का व्यवहार करें, ऐसी हमें कोशिश करनी चाहिए।

लक्ष्मी बढ़े, पर पैसा नहीं

आज आदिवासियों को श्रम-आधारित और प्रेम-आधारित करने के बजाय हम उन्हें पैसा-आधारित करते हैं। उनको सिखाते हैं झूठे मूल्य। पैसे का स्थिर मूल्य नहीं है। अभी मैंने २०० रुपये लिये और दस साल बाद मुझे वह वापस करने हैं तो ज्यादा देने होंगे। क्योंकि पैसे की कीमत दस साल बाद घट गयी। क्या व्याज की परम्परा इसी तथ्य की द्योतक नहीं है? वास्तविक लक्ष्मी अन्न और अन्य सामग्री है, पैसा नहीं। पैसे से उनकी भौतिक और नैतिक उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए वह समृद्धि खूब बढ़े, लक्ष्मी खूब बढ़े, किंतु पैसा न बढ़े, यह हमें देखना होगा।

कोरापुट जिले में भगवान को शराब अर्पण करते हैं। किसी भी अच्छे मौके पर भगवान के नाम से शराब पीने का रिवाज है। ईसाई लोगों में भी ऐसा ही होता है। मैंने उस दिन व्याख्यान में कहा कि भगवान शराब नहीं चाहता है, 'पत्रम् पुष्पम् फलम् तोयम्' चाहता है। यह पद्य मैंने उन्हें कंठस्थ करवाया और कहा कि इसी शास्त्र-वाक्य के अनुसार बर्ताव करो। जब वे लोग वापस गये तो कार्यकर्ता मुझसे कहने लगे कि वे बहुत आनन्द में और खुशी में गये। कहते थे कि बाबा ने हमें शास्त्र सिखाया। आज तक उनको किसीने वह नहीं सिखाया था।

आदिवासियों के पास सद्ग्रन्थ पहुँचाये जायँ

कोरापुट में शेरों का बहुत डर है, इसलिए जैसे कैदियों को जेल में रखा जाता है, वैसे ही बन्द कोठरी जैसे उनके घर होते हैं। घरों में सिर्फ एक छोटा-सा दरवाजा रहता है। एक भी खिड़की नहीं रहती। सूर्योदय से लेकर सूर्योदय तक वे उसी घर में रहते हैं, जहाँ हवा भी नहीं रहती। उनके पास कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम नहीं है, न कोई उद्योग है। वे बेचारे शराब पीकर पड़े रहते हैं। इसलिए यदि हम उनके पास कोई आध्यात्मिक पुस्तक ले जायँगे, तभी कुछ दे सकेंगे। केवल बाहरी प्रयोग करके, उनकी भौतिक उन्नति करके हम छूट नहीं सकते। हमें उनके पास किताब पहुँचानी चाहिए, उनकी श्रद्धा बढ़ानी चाहिए और उनके लायक विचार उनको सुनाने चाहिए।

अहिंसा की रक्षण-शक्ति से ही दुनिया को आश्वस्त करें

दूसरा काम है ग्राम-दान और शान्ति-सेना। मेरे अन्तःस्तल में अत्यन्त समाधान है, लेकिन ऊपर के मन में जब तक शान्ति-सैनिक नहीं बनते हैं, तब तक समाधान नहीं होगा। जहाँ-तहाँ दंगा हो और हम उसे शांति से देखा करें तो इससे अहिंसा निकम्मी ही साबित होती है। अब हिंसा में लोगों को विश्वास नहीं रहा। गति एक जगह जाकर रुक गयी है। बड़े-बड़े शस्त्रास्त्र रखनेवाले भी उसपर भरोसा नहीं करते। किन्तु अहिंसा में भी विश्वास बैठ नहीं पाया है। ऐसी स्थिति में जहाँ दंगा हो, वहाँ पुलिस की जरूरत पड़े और हमारी अहिंसा निकम्मी बने, यह अच्छा नहीं। मेरा यह मानना है कि अगर हम शांति-सेना खड़ी करके अहिंसा की रक्षण-शक्ति को सिद्ध करें तो दुनिया को आश्वस्त कर सकते हैं।

शान्ति-सेना से कोई डर नहीं

शान्ति-सेना के लिए लोक-सम्मति चाहिए। हिंसक सेना भी लोक-सम्मति के बिना काम नहीं कर सकती। पैसा देकर विकास का काम हो सकता है शांति-स्थापना का नहीं। इसलिए हमें घर-घर से शांति-सेना के लिए सम्मति मिलनी चाहिए। इसके प्रतीक रूप में हर घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय और उसी आधार पर शांति-सेना खड़ी की जाय। याने जितने घरों में वह पात्र रहेगा, उतने घरों की मदद आपको मिली। मैं आशा करूँगा कि रचनात्मक कार्यकर्ता जल्द-से-जल्द यह काम उठायेंगे। हमें शान्ति-सेना का डर छोड़ना होगा। वैसे डर तो आगे-पीछे नीचे-ऊपर है ही, इसलिए इसमें डरने की कोई बात नहीं।

सूत्रांजलि से शान्ति को मदद

सूत्रांजलि के बारे में मैंने कहा है कि गांधीजी की याद के लिए सबसे बढ़कर कोई चीज है तो वह सूत्रांजलि ही है। सालभर में यदि हम तीन-चार घंटा श्रम करें तो वह ज्यादा नहीं है। इससे बढ़कर गांधीजी को और कौन-सी श्रद्धांजलि हो सकती है? हमारे देश में ३६ करोड़ लोग हैं। उनसे कम-से-कम ३६ लाख गुंडियाँ मिलें, तभी मैं समझूँगा कि वह चीज फैलेगी। इसमें हमें समाधान मानना चाहिए। सूत्रांजलि का काम सब लोग उठायें। सबके द्वारा इस काम को उठा लेने से अशान्ति मिटेगी और शान्ति को मदद मिलेगी, यह मेरा दावा है।

व्यापारियों के बीच

ऊँझा (महेसाणा) २८-१२-'५८

व्यापारी भाइयों से हमारी अपेक्षाएँ

मुझे बताया गया कि यह स्थान उत्तर गुजरात के व्यापार का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ सद्भावनावाले व्यापारी आया करते हैं। ये लोग गाँववालों की अज्ञानमय परिस्थिति के प्रति सतर्कता न बरतें, यह संभव नहीं। ये लोग तो सबसे ज्यादा जागृत माने जाते हैं। कोई भी घटना हो जाय तो शेयर बाजार पर उसका तत्काल असर हो जाता है। उष्णता में जरा भी फर्क होते ही थर्मामीटर में दीख पड़ता है, इसी तरह व्यापारियों पर भी बाहरी वातावरण का असर हुआ ही करता है। ऐसे व्यापारियों के सामने

भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान की बातें विस्तार के साथ नहीं कहूँगा। अब सात-आठ वर्ष बाद भी लोगों को यह समझना बाकी रह जाय, यह ठीक नहीं।

हिन्दू-धर्म में व्यापारियों का अपूर्व गौरव

हिन्दू-धर्म व्यापारियों पर बहुत अधिक उत्तरदायित्व सौंपता है। उसने माना है कि व्यापार भी मोक्ष का एक साधन है। भगवद्गीता ने व्यापार को एक धर्म के रूप में माना है। व्यापारी अपने व्यापार को धर्म समझकर निष्काम भाव से लोक-सेवा के लिए व्यापार करे तो उसे मोक्ष पाने का भी अधिकार उतना ही मिलता है, जितना कि वेद पढ़नेवाले किसी ब्राह्मण को। दूसरे किसी भी धर्म ने व्यापारियों को इतनी प्रतिष्ठा नहीं की है। मोक्ष के लिए उन्हें व्यापार छोड़ने की कोई बात नहीं। वे सत्यनिष्ठा के साथ व्यापार करते हैं तो उसीके द्वारा उन्हें मोक्ष मिल सकता है।

व्यापारियों से अधिक आशा क्यों ?

हिन्दुस्तान में बहुत से लोग नम्र, सादे, दयालु, प्रामाणिक और सेवाभावी हुआ करते हैं। फिर भी वर्तमान में व्यापारी धर्म का पालन जिस तरह करना चाहिए, उस तरह करते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। इसमें व्यापारियों का ही दोष नहीं। आज सारा समाज ही अस्तव्यस्त हो गया है। समाज की काफी अवनति हो गयी है। जब कि आज सभी निम्नस्तर पर उतर गये हैं तो व्यापारी भी नीचे उतर गये हैं—इस तरह उनपर आक्षेप नहीं किया जा सकता।

व्यापारी याने महाजन ही हैं। उनके हाथ में समाज-सत्ता का बहुत बड़ा बल हुआ करता है। व्यवस्था और व्यापार के कारण ही पैसे का संचय होता है। इसलिए उनके हाथ में सत्ता का बल है। जैसा बल राजसत्ता में होता है, वैसे ही व्यापारियों में भी वह रहता है। इसलिए साधारण लोगों की अपेक्षा उनसे विशेष आशा रखी जाती है। यदि उसकी पूर्ति नहीं होती तो व्यापारियों की खूब ही निन्दा होती है। आज देश में बहुत-से लोग व्यापारियों की निन्दा करते हैं। फिर भी उनके बिना किसीका चलता नहीं। आज हिन्दुस्तान की ऐसी स्थिति नहीं है कि व्यापारियों के बिना चल सके। मैं समझता हूँ कि एक बार अगर सरकार छुट्टी लेकर बैठे तो काम चल सकता है, लेकिन व्यापारी छुट्टी ले लें तो काम न चलेगा। इतना अधिक महत्त्व व्यापारियों को प्राप्त है। व्यवहार की दृष्टि से उनपर इतना अधिक बोझ है। इसलिए व्यापारियों से विशेष आशा की जाती है, किन्तु खेद है कि वह पूरी नहीं हो पाती।

समझदारों को बताना नहीं पड़ता

आप जानते हैं कि सात-आठ वर्षों से गाँव-गाँव और शहर-शहर में भूदान, सम्पत्तिदान की माँग करता रहा हूँ। भूदान में ४०-५० लाख एकड़ जमीन मिली और उसमें से ८ लाख एकड़ के करीब पुनर्वितरित भी हो चुकी है। इसके बाद मैंने संपत्तिदान की माँग की तो मुझे विशेष जवाब नहीं मिला। मैंने इसके लिए प्रयत्न भी नहीं किया। इसका कारण यही है कि मैं समझता हूँ कि व्यापारी तो समझदार है। जब सारे वातावरण में प्रेम और करुणा का भाव फैला हो तो वे समझ जायँगे और खुद ही उस भावना को उठा लेंगे। वे खुद ही आगे आकर कहेंगे कि हम संपत्तिदान का काम अपने ऊपर उठा लेते हैं।

धन के साथ व्यवहार-कुशलता, बुद्धि और करुणा भी दें

इसलिए व्यापारी प्रेमपूर्वक सेवा करने के लिए मेरे साथ आयें और सर्वोदय-कार्य में अपना समय एवं धन समर्पित करें। वे सर्वोदय-आन्दोलन का नेतृत्व करें तो उनकी प्रतिष्ठा और आदर बढ़ेगा और सरकार पर भी अच्छा असर पड़ेगा। अतः व्यापारी और कुछ करें या न करें, जो कुछ होना है, सो होगा। आप लोग केवल प्रेमपूर्वक आगे आयें और बतायें कि अपने संपत्तिदान का आप कैसा उपयोग करना चाहते हैं। इसके लिए आप ही योजना बनायें, क्योंकि आप इसके लिए कुशल हैं। सारांश, हम केवल आपसे पैसा ही नहीं चाहते, बल्कि उसके साथ आपकी व्यवहार-कुशलता, बुद्धि और करुणा-शक्ति भी हमें चाहिए। यदि पैसे के साथ मुझे ये तीनों चीजें मिलें तो गुजरात में बहुत कुछ काम हो सकता है।

शांति-सेना का भार उठायें

आज आप देख रहे हैं कि शांति-सेना का काम चल रहा है। जहाँ झगड़ा, क्लेश खड़ा हो जाय, वहाँ हमरे सेवक कूद पड़ेंगे और शांति स्थापन करने के लिए जायँगे। जब ऐसा कोई अवसर न हो, तब वे गाँवों में जायँगे और शहरवालों की सेवा करेंगे। याने सारे भारत में सेवा के द्वारा परिचय कर प्रभाव डालते हुए वे शांति-सैनिक काम करेंगे। इस तरह हम एक सेवा-सेना खड़ी करना चाहते हैं। इसके लिए व्यापारी योजना-शक्ति से पैसा भी दें। मैं आपसे माँगूँगा तो नहीं, लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि आपके घर में जितना समझें, उनमें एक को (दरिद्रनारायण को) और मिला लें और उसका हिस्सा, फिर वह पाँचवाँ या छठा जो भी हो, दे दें। मैं आपसे और कुछ नहीं माँगता। घर में जितना खर्च होता हो, उसीका एक हिस्सा मैं माँगता हूँ, आपके व्यापार में हिस्सा नहीं माँगता। आपके इस धन का उपयोग सेवा-सेना और शांति-सेना के निष्पक्ष काम में ही होगा।

मुझे व्यापारियों पर पूर्ण श्रद्धा

बहुत-से लोग कहते हैं कि व्यापारी सुन तो सब लेते हैं, पर करते कुछ नहीं। लेकिन मैं यह मान नहीं सकता। मैं उनपर श्रद्धा रखता हूँ। यदि आप उसे पूरी कर सकें तो करें। आपस में चर्चा कर हमारे इन सेवकों एवं रविशंकर महाराज से बातें करें। आप आज ही यह काम करें, इसके लिए मुझे जल्दी नहीं है।

आप दे सकते हों तो दें। शान्ति-सैनिक बन सकते हों तो बनें। लेकिन जो दें, वह एक बार नहीं, जब तक जीवन चलता रहेगा, तब तक देते रहें। अन्त में मैं यही कहता हूँ कि आप इस आन्दोलन का नेतृत्व करें। यदि नेतृत्व भारी मालूम पड़े तो सेवकत्व करें। जो भी सध पाये, उसे करें। ● ● ●

अ नु क्र म

१. देशी नरेश···	नलासर	३० दिसंबर	६५
२. लोकशाही की···	भावनगर	८ नवंबर	६७
३. आदिवासियों को···	व्यारा	२४ सितंबर	७०
४. व्यापारी भाइयों से···	ऊँझा	२८ दिसंबर	७२

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता: राजघाट, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १२८५ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी